फिर खिलेंगे गंधवाही फूल

बोधि प्रकाशन


प्रथम संस्करण : अक्टूबर, 2000
आवरण : हरीश जे थानवी
ISBN 81-87697-20-2

बोधि प्रकाशन, जयपुर के लिए
पाठ्य भाग प्रिण्ट-ओ-लैण्ड, हवा सड़क, जयपुर तथा आवरण
कमला आर्ट प्रिन्टर्स, जयपुर से मुद्रित एवं 64, शान्ति निकेतन कॉलोनी,
किसान मार्ग, बरकत नगर, जयपुर से प्रकाशित। दूरभाष 0141-591087 मूल्य : 75.00

# फिर खिलेंगे गंधवाही फूल

कविता-संग्रह

उदयकरण सुमन

बोधि प्रकाशन
जयपुर 302015

अनिल, रिन्कू, रोविन, राहुल
और सौरभ गर्ग के लिए

# योगी सवाल

पृष्ठ लम्बे और भारी हो गये हैं
वर्जनाओं के
शब्दों ने खो दिये हैं
अर्थ सारे
रचना-धर्मिता के नाम पर
रह गये हैं शेष
किन्तु चन्द नारे।

अतृप्ति की चरम सीमा है
नदी के तट घाट प्यासे हैं
तृषित हैं होंठ सागर के
पनघटों के कंठ सूखे
निर्झरों के सांस प्यासे हैं।

पात चिकने
गात गोरे
भंगिमा पर क्रूर काली है
देह राग में जो मस्त झूलें
उन के घर
ईद है, दीवाली है।
शेष जन के भाग्य में
विषमता की आँधियां
अभावों के बगूले हैं

## जीवन की अनुगूँज

कविता नहीं है
कल्पना की बिसात पर
केवल शब्दों की शतरंज
जीवन की गौरव गाथा है
आत्मा सी उद्‌भासित/और तेजवन्त।

कविता
दर्द के गोमुख से
होती है प्रवाहित
देवसरिता सी- और
जन-जन की चेतना में
समा जाती है बूंद-बूंद।
उकेरती है कण-कण में
जीवन के बीज
.धरती और आकाश में -
फैल जाती है
रसवन्ती प्राण वायु सी।

शब्द-शब्द सुलझाती है
रहस्य की अनबूझ पहेलियां
निःशब्द पहुंच जाती हैं
अतल-पाताल तक/अनावृत करती हैं
राख में दुबकी

नैतिकता सदाचारों की देह जर्जर
पांव लूले हैं।

इतिहास पुरुषों के घरों में
समय का सूर्य बन्दी है
प्रश्नवाचक चिह्न सी
आदमी की जिन्दगी है।
चौराहों पर घुटन है, तमस है
फुटपाथी कुहासा है।

दिवंगत रोशनी के नाम पर
रैलियों का जमघट है- तमाशा है।

शकुनियों के पास पत्ते हैं सत्ता के
कुटिलता का खेल जारी है
चिड़ी की दुग्गी तुरुप है
इक्के से भारी है।

गिरगिट संवादों के शब्दार्थ
गिरवी हैं दलालों के
सन्दर्भों से कटे उत्तर हैं
योगी सवालों के।

## जीवन की अनुगूँज

कविता नहीं है
कल्पना की बिसात पर
केवल शब्दों की शतरंज
जीवन की गौरव गाथा है
आत्मा सी उद्भाषित/और तेजवन्त।

कविता
दर्द के गोमुख से
होती है प्रवाहित
देवसरिता सी- और
जन-जन की चेतना में
समा जाती है बूंद-बूंद।
उकेरती है कण-कण में
जीवन के बीज
.धरती और आकाश में -
फैल जाती है
रसवन्ती प्राण वायु सी।

शब्द-शब्द सुलझाती है
रहस्य की अनबूझ पहेलियां
नि:शब्द पहुंच जाती हैं
अतल-पाताल तक/अनावृत करती हैं
राख मे दुबकी

चिन्गारिया चेतना की।

कविता नहीं है
मुग्धा प्रेयसी की वेणी का फूल
और उसकी मादक सुगन्ध भी
नहीं है
उसके रसीले अधरों का बंसी-रव!

कविता
धनुप की टंकार से नि:सृत जैसा
कर्म और जागरण का गीत है।
रेशमी किरणों के प्रकाश का
मधुरिम संगीत है।
भग्न और उदास हृदयों के
उल्लास का संवाद है
सृजनवती धरती की आत्मा का
शाश्वत-मुखरित आह्लाद है।

आग की तपन है
ऊर्जा है सूर्य रश्मि की
ज्वार सागर का
जीवन प्रपात के प्रवाह की
अनुगूँज है।

## सृजन

पत्थर के तराशने में
जो आनन्द है
वह तोड़ने में कहां ?
सृजन में जो सुख-सन्तोष है
वह विध्वंस में कहां ?

पत्थर तो पत्थर है
जीवन-मृत्यु के मर्म से परे
वह टूट कर बने राह का रोड़ा/या बने
खंडहरों के संस्करण का एक हिस्सा
जिनकी तलहटी में बन्द है
हमारा गौरवशाली इतिहास
शताब्दियों से।

जो साक्षी है
हमारे लीलामय दिनों का
अथवा तराशने पर बने
एक भव्य मूरत या देव प्रतिमा
जिसे हम आसक्ति से निहारें
हमारे संस्मरणों की कामचेष्टा में
उतरती चली जाए।
विगत प्रेमिका की रूप छवि सी
गढ़ती चली जाए तीर सी/देह में, प्राणों में।

अथवा उतारें आरती
नतमस्तक
करें प्रार्थना/अर्चना करें
सर्वशक्तिमान लोकदेवता की तरह।

फिर भी/पत्थर तो पत्थर है/हर दशा में
निर्वाक्, निर्गत, अचेतन
शून्य/आनन्दानुभूति से।

आनन्द का सच्चा स्रोत
तोड़ने वाले हाथों में नहीं
तराशने वाले हाथों की
करामाती उंगलियों से
निर्झर की तरह फूट पड़ता है-
जैसे कलियों से गन्ध
फूलों से पराग झरता है।

सृजन में ही- सहज शाश्वत आनन्द निहित है
क्योंकि वही
ऊर्जा को उपार्जिता से
कर्म को कर्त्तव्य से
राह को गंतव्य से
अनुभूति को अभिव्यक्ति से जोड़ता है।

अभिव्यक्ति की रचनाधर्मिता का
प्रतीक है यह दृश्य संसार
यह विराट ब्रह्माण्ड
कर्म और ऊर्जा का/अलौकिक प्रसार है
जिस में सृजन बीज सा निहित है
निरन्तर पुष्पित-पल्लवित साधनारत
सृजन- आत्मा का अनन्त विस्तार है!

## अभी भी शेष है

अभी भी
स्वार्थ के अन्तहीन
तपते थार में
शेष है कहीं
परमार्थ का एक नखलिस्तान
जहां बोया जा सकता है
मनुष्यता का एक हसीन सपना।

अभी भी
तिमिर से घिरे
निर्जन बीहड़ जंगलों में
शेष है कहीं
प्रकाश का कल-कल करता
एक झरना
जिसके शुभ्र स्फटिक सलिल से
पनप सकती है
विश्वासों की नई पौध।

अभी भी
विश्वासघातों की निर्मम घाटियों में
शेष है कहीं
प्यार और सदाचारों की
केसर-क्यारी

जहां उग सकते हैं
संवेदना के अनन्त फूल।

अभी भी
गतिशील है धरा
खनिज और सम्पदाओं से परिपूर्ण
जिसकी मातृछाया में
जिया जा सकता है
एक रोमांचक सुखद जीवन।
संगीत सा लयबद्ध
कविता सा मादक
तरंगित और शाश्वत।

अभी नहीं आया है
निराश होकर बैठने का वक्त
लिखा जा सकता है
जीवन का एक महाकाव्य
अंकुरित हो सकते हैं
चेतना की वसुन्धरा पर
संकल्पों के सुखद बीज-
अनन्त फलदायी और सार-गर्वित!

## जीवन और शब्द

जीवन और शब्द
पूरक हैं परस्पर
शब्द- जीवन को देते अभिव्यक्ति/जीवन
शब्दों को देता है - स्वर।
दोनो में है अटूट- गहन आत्मीय सम्बन्ध - जैसे
प्रकाश-ऊर्जा
फूल और सुगन्ध!

हठात्
उभर आते हैं जैसे तसव्वुर में
रूप और रस
वैसे ही पारिभाषित और रूपायित होते हैं
दोनो चेतना में एक साथ/जैसे-
सुख-दुख/उल्लास-विषाद
काम चेष्टा, आचार-व्यवहार
शब्द/जीवन की हर अनुभूति को
देते हैं अर्थ/बनते हैं सार्थक साक्षी
शब्द की नहीं होती कोई सीमा
होते अनन्त
सहज, सरल और क्लिष्ट
ज्ञानी, ध्यानी और महाप्रज्ञ
भौंथरे और वजनदार।

भाषा के व्यवधान के बावजूद
शब्द जानते हैं- स्वयं को व्यक्त करने की कला
बन जाते हैं
कभी संकेत और कभी भाव-मुद्रा।

जब तक
देह से सम्पृक्त रहता है- शब्द
सामान्य कटु तिक्त ही बना रहता है- शब्द
किन्तु जब/देहातीत होकर
आत्मा से जुड़ जाता है- शब्द
तुलसी और कबीर हो जाता है- शब्द
मीरा का गिरधर गोपाल,
नानक का 'एको ऊंकार'
हो जाता है- शब्द।

विराट वृहताकार होकर
कैवल्य के प्रसार तक
ब्रह्माण्ड का आचमन
कर आता है- शब्द
बन जाता है ध्यान और योग
निःशब्द होकर
परमब्रह्म साकार-निराकार हो जाता है- शब्द।
अनहद नाद सा गुंजरित होकर
सृष्टि के महाकाव्य का
अनुवाद हो जाता है- शब्द।

आत्मा और परमात्मा के संवाद का
संवाहक हो जाता है- शब्द
तब आत्मा के अमृत तत्व का
अजेय-अज्ञेय-अमर
संस्करण हो जाता है- शब्द।

# मेरी कविता

मेरी कविता
चाहे न बन सके
साहित्य में मील का पत्थर
न हो दीर्घजीवी
सन्दर्भ-ग्रन्थों की
अनुशंसा-संजीवनी पाकर।
लौट आये चाहे
पत्र-पत्रिकाओं से
संपादकों के सखेद अभिवादन के साथ

फिदा न हो चाहे
फिदा हुसैन
मधुर रूप माधुरी पर
पुरस्कारों की यश श्री बुलन्दियों पर
खड़ी हो
चाहे न गा सके गौरव-गीत
मठपति आलोचकों की
कृपादृष्टि से रहे वंचित।

पर हर सुबह/नीम अन्धेरे में
गौरैया सी चहचहायेगी
सूर्य की पहली किरण सी
मुस्करायेगी!

जागृति के शंखनादी स्वरों में
सुर मिलाकर
जड़ता के सन्नाटे को तोड़ेगी
मजदूर हाथों की बनेगी
कस्सी और कुदाल!

बुर्जुआ भाग्यवादी, वर्गभेदी
व्यवस्था के खिलाफ़ खड़ी होगी
एक समग्र जनान्दोलन की तरह
अपनी पूरी जीवंतता के साथ।
सम्भावनाओं के सूर्य को जन्म देगी
विध्वंस, उत्पीड़न, शोषण
अलगाव के शोकग्रस्त दिनों में
बनेगी प्रार्थना नवप्रभात की।

सत्ता के इर्द-गिर्द घूमते
दल्लालों, दरबारियों, घूसखोरों के
चेहरे को करेगी बेनकाब।
पाखण्ड की जमीन तोड़ेगी
हलवाहे/चरवाहों के अस्फुट अधरों की
बनेगी/बांसुरी-धुन।
श्रम के अलगोजों पर
गायेगी/विकास गीत।

समय की विराट हथेली पर
कर्म रेखा की तरह
उकेरेगी
अनन्त ऊर्जाओं के शब्द चित्र
पहुँचेगी
आलोक के गंतव्य तक !

## सत्य का उद्घोष

मैं जब तलक जिंदा हूँ
रहूंगा संघर्ष-रत
घनेरे अंधेरे से
जीवन्त-मृत्यु के इस शाप से
सभ्यता के क्रूरधर्मी अनुताप से।

लड़ूंगा
चाहे/न सही/सूर्य की तरह
पर/एक जुगनू-दीप-सा
लड़ूंगा निरन्तर
जोड़ दूंगा/प्रकाश के इतिहास में
अपने नाम की पहचान का
एक पन्ना और।

जिसे सुन/पढ़
जगेंगे
विश्व के उपेक्षित पस्तहिम्मत लोग
सुलाया गया जिन्हें सदियों से
पिलाकर भाग्यवादी/धर्मोन्माद की सुरा
जिन्हें काटा गया-घास सा
बाँटा गया-प्रसाद सा
रक्तिम हथियार बने हैं
जिनकी अस्थियों से।

मैं उनके सपनों को
रंग दूंगा/पारदर्शी चेतना के।
मैं शंख पूरूंगा/सत्य के उन्मेष का
बनूंगा कालकूट मायावी प्रपंच का!
करुंगा विखण्डित
भ्रम-जाल मिथकों का।
दूंगा मैं दस्तक
नव सदी के द्वार पर
नये जागरण की
प्रकाश के अवतरण की।

सत्यद्रोही प्रतिहिंसक लोग चाहे
बनें मेरे प्राणद्रोही
टांग दें सूली पर
गैलीलियो की तरह
पर न मर पायेगा
सत्य का उद्घोष मेरा।

ध्रुव सत्य सा गगन में जगमगायेगा
पथ भ्रान्त जग का
बनेगा दिशा दर्शक राह चेरा।
अंधेरे हैं घनेरे
भ्रान्तियों के क्रूर जंगल
जो रोकते हैं/राह जीवन की
क्रियाशीलता/हलचल।

इन जंगलों में
अग्नि की फसलें पकाऊंगा
जब तलक जिन्दा हूँ
रहूँगा संघर्षरत
अनवरत
प्रकाश के स्वर जगाऊंगा।

# समय

समय की वेगवती नदी
बह रही निर्बाध
युगों, सदियों-मन्वन्तरों से
अविरल-अविराम।
समय नहीं रुकता कहीं भी/पल भर निमिष मात्र
शिशिर, पतझर, बसन्त में
पृथ्वी, आकाश, पाताल, दिगृदिगन्त में
फूल-धूल, पत्थर-पात पर
मनस्वी दूर्वा हरित घास पर
पर, हर कहीं
प्रतिध्वनित होता उसी का स्वर।

सरपट दौड़ता ही जा रहा/समय का रथ,
मन्वन्तर से मन्वन्तरों तक
दिन रात के अनथक अश्वो पर।
समय के प्रवाह में/बह रहा ब्रह्मांड
समग्र मायालोक तन्त्रजाल
लक्ष-लक्ष जीव योनियाँ/लक्ष-लक्ष पुद्गल पदार्थ
द्रुमदल लतायें/पेड़-पादप, विशाल जड़-चेतन
जलचर, देव-दानव, किन्नर- पिशाच

समय के प्रवाह में बह रहे सब
ज्यों एक तिनका सागर सतह पर

समय के गतिचरण/ज्यों तुला के पाट
उत्पत्ति-विकास/मृत्यु-ह्रास।

समय अकाल पुरुष नियन्ता का सहोदर
समय नहीं रुकता/पलभर, निमिष मात्र
फिर भी हर कहीं
उसी की छाप रंगत।
सर्वत्र उसी का प्रतिबिम्ब
होता दृष्टिगत।

उसी से बदलता
जड़-चेतन का आकार पल-पल
नये पात-पल्लवों में
गूंजती उसी की हँसी
मुखरित उसी का स्वर।
उसी की पदचाप सुनते
मणिकर्णिका के घाट पर।
कहीं उल्लसित धरा
कहीं भीम गर्जन
कहीं राग मल्हार/अश्रुपात
कहीं मृत्यु-नाग-दंशन।

क्षण क्षण बदलता रंग
अजब ऐसा चितेरा
जीर्ण से जीर्णतम होती धरा
फिर नवीन से नवीनतम।
यह समय का खेल/कौतुक यह समय का

समय
महाविराट जादूगर!
अद्‌भुत अनागत
स्वागत! सुस्वागत समय का!

## शक्ति ही सर्वयुगीन है

पत्थर तो केवल पत्थर है
जड़
अचेतन
निर्गत, निर्वाक्
पर, उसकी कठोरता ही
उसकी
देह का गुणात्मक विस्तार है
अस्तित्व का आधार है
प्रतीक है सजीवता का।

कठोरता ऐसी कि सह ले
प्राणवान छैनी की पैनी
धाराधार चोट
ताकि
तराशी जा सके
एक स्वप्निल आकृति
भव्य और मनोहर।

वही पत्थर
शक्ति सम्पन्न कीर्तिमान है
पत्थरत्व की शान है
आत्म केन्द्रस्थ सर्वयुगीन है।

जो एक ही चोट से
हो जाये किरच् किरच्
धराशाही, धूलिसात
वह पत्थर है न रेत है
गली का गलीज रोड़ा है
अभिशापित प्रेत है
कलंकी/कुलांगार
का पुरुष सा।

## वक्त आयेगा

जाने कैसे
ढल जाता है कोई सूरज
जीवन की शिखर दुपहरी में
धूंआ बन जाती है
एकाएक/कोई जवान लड़की ?
चीख में बदल जाती हैं/ऋचायें
आयतें कुरान की
पथरा जाते हैं
सम्वेदना के शब्द।

धुंधला जाते हैं
चीजो के चेहरे
आंखो में उतर आता है
स्वार्थ का मोतियाबिन्द
आदमी के चेहरे पर
उग आती हैं गिद्धों की चोंच
जो नोंचती है बेतहाशा
इन्सानियत को।
जैसे मुर्दा लाश को
चिंचोड़ती हो-चील कोई।

जाने कैसे जंग खाये
कुंद चाकू/जो काटते नहीं अमरूद

उतर जाते है पसलियों में
पूजा में बैठे हाथ
उछलकर
बन जाते है छुरा कसाई का
जर्जरित पीड़ाओं की तरह
दहलकर
पीली पड़ जाती है प्रसन्नतायें।

यह फरेब है
काले जादू का/न तिलिस्म का
न किसी इंद्रजालिका का इंद्रजाल है
वक्त की बेढंगी चाल है
सोई है चेतना इन्सान की।

वक्त आयेगा
अंधेरे से कुन्द काली दिशाओं में
फैल जायेगी/ताजी हवाओं की तरह
मनुजता की रेशमी किरणें।

तड़तड़ा कर टूट जायेगा
अनास्थाओं वर्जनाओं का
यह भ्रम जाल।

जीवन की वृष्टिधारा
बहने लगेगी-एकाएक
मनुष्य की अन्तश्चेतना में।
मुखरित हो चहकने लगेगी
शेफालिका सी,
मनुजता की केसर क्यारी
जन-मन में।
वक्त आयेगा।

## यह हम कहां आ गये ?

यह हम कहां आ गये,
किस युग में ?
जहाँ उसूल का पर्याय
मात्र स्वार्थ हो कर रह गया है,
परमार्थ
प्रवंचना की कीटवाही नालियों में
बह गया है।
कांव कांव करते हैं
मानसरोवर पर कौए
दुर्भिक्ष ओढ़ कर
बैठे हैं/बासन्ती महुए।
घुटन-दबाव, हादसे
हैं तैरते हवाओं में
संत्रास
विष घोल रहा
संदली फिजाओं में।

यह हम कहाँ आ गये
किस सदी में ?
जहाँ
लाशों पर बहते हैं रास्ते
डसते हैं

फणियर भूख और अभाव के।
संगीनों की दहशत में
पलते हैं जीवन के साये
दुश्मन बन बैठे/आपस मे
माँ के जाये।
मनुष्य के चोले में
गिद्धों-गिरगिटों का मेला है
शब्द हैं निःशब्द सब
भीड़ का जमाव है
पर आदमी अकेला है।

यह हम कहां आ गये
किस देश में
जहां सूर्य है
पराजित अंधेरो से
विस्फोटों के धुएं से
दम घुटते हैं सवेरों के।

चहल पहल बन्दी है
कर्फ्यू की कारा में
धरम-करम सब डूब गये
घोटालों की धारा में।

आओ,
एक नखलिस्थान ही रचें
इस सुलगते सहारा में
प्रेम और विश्वास का
आस और उल्लास का।

## जीवन की लौ

जिन्दगी है
अतृप्तियां सपने अधूरों की
एक लम्बी शृंखला
जिसका न कोई छोर
जब भी टूटती है
मध्य ही से टूटती है
ज़िन्दगी की डोर।

कब ढले सूरज
कब कहां हो शाम जीवन की,
कब जले
देह सुंदर पंचभौतिक
चमक उठे एक लपट आग सी
बीत जाये असमय
खिलखिलाती भोर
रुके किस पड़ाव पर
वासनाओं कामनाओं का
यह दनदनाता काफिला
थमे मचता शोर।

कब बरस जायें
कौन जाने
बन्धु साथियों के

अश्रुपूरित नयन हों विभोर।
किस मुकाम पर मिले
सांस को विश्राम
शब्द हों निःशब्द सारे
अर्थपूर्ण काम
और सहसा ठहर जाये
समय की हिलोर ?

जीवन-मृत्यु में
निश्चित न कोई फासला
समय सीमा
ना ही गणित कोई
वर्ष-मास-दिन का
थोड़ा-ज्यादा जो भी मिले
गुजार दें वक्त जीवन का
ज्यों नींव की ईंट
पत्थर मील का।

मृत्यु के बाद भी
हयात की लौ-जगमगाये
ज्यों/जगमगाता
लैम्प पोस्ट का
और दीया राह का।

## सपने

जीवन
जन्म और मृत्यु के बीच का समय!
एक सिलसिला है-
अंतहीन सपनों का/असमाप्त
दनदनाती वासनाओं-कामनाओं का।

सपने-
मन के तहखाने से निकल पड़ते हैं
कई-कई चीजों की तरह
बेकार और बेशकीमती
जैसे खदानों से खनिज
कुछ हीरे/कुछ पत्थर।

सपने
ठसाठस भर जाते हैं
आकांक्षाओं के अन्तरिक्ष में
भूरे काले बादलों की तरह
जगमग तारक दल जैसे।

कई-कई सपने होते हैं
बहुत मासूम और भोले
जैसे चिड़िया के चूजे
जैसे तितली/जैसे फूल
निर्दोष और निरापद।

अश्रुपूरित नयन हों विभोर।
किस मुकाम पर मिले
सांस को विश्राम
शब्द हों निःशब्द सारे
अर्थपूर्ण काम
और सहसा ठहर जाये
समय की हिलोर ?

जीवन-मृत्यु में
निश्चित न कोई फासला
समय सीमा
ना ही गणित कोई
वर्ष-मास-दिन का
थोड़ा-ज्यादा जो भी मिले
गुजार दें वक्त जीवन का
ज्यों नींव की ईंट
पत्थर मील का।

मृत्यु के बाद भी
हयात की लौ-जगमगाये
ज्यों/जगमगाता
लैम्प पोस्ट का
और दीया राह का।

## सपने

जीवन
जन्म और मृत्यु के बीच का समय!
एक सिलसिला है-
अंतहीन सपनों का/असमाप्त
दनदनाती वासनाओं-कामनाओं का।

सपने-
मन के तहखाने से निकल पड़ते हैं
कई-कई चीजों की तरह
बेकार और बेशकीमती
जैसे खदानों से खनिज
कुछ हीरे/कुछ पत्थर।

सपने
ठसाठस भर जाते हैं
आकांक्षाओं के अन्तरिक्ष में
भूरे काले बादलों की तरह
जगमग तारक दल जैसे।

कई-कई सपने होते हैं
बहुत मासूम और भोले
जैसे चिड़िया के चूजे
जैसे तितली/जैसे फूल
निर्दोष और निरापद।

## बजती है सांसो की सरगम

वहां भी महक रहा है जीवन
बजती है
सांसो की सरगम-हरदम।
जहाँ
ना ऊर्जा उजास/गन्ध ना प्रकाश
ना ही नल
पीने को जल
रहने को घर ना बार
सड़े-मड़े से घूरे
खस्ता और अधूरे
है केवल
धूल-धड़ाका
कीचड़-कादा।

बच्चे काले और कलूटे
नंगे भूखे
डोल रहे है इधर-उधर
ज्यों भेड़ों के रेवड़ आवारा
नहीं जानते पोथी-पुस्तक
नहीं जानते तख्त हजारा।

कोई
नन्हा सा मासूम

अपना-अपना राग
अपनी-अपनी दीवाली
अपना-अपना फाग

पर
उनके सपने इतने भोले
दुनिया इतनी सी छोटी
मिल जाये
बस पेट भराई को रोटी
तन ढंकने को लत्ते-लीरे
क्या करने फिर मानक-हीरे।

उन संन्यासी सांसों का अभिनन्दन
अर्चन उन प्राणों का
वहां भी चहक रहा है जीवन
सोन चिरैया के चूजे सा
भोला और मासूम
वहाँ भी कौंध रहा है जीवन
बजती है सांसों की पायल-हरदम।

हमदर्द जिंदगी का
इंसानियत का पैगाम है
दर्द एक ठंडी छांव है।

उस दर्द से बेदर्द होकर
जब कोई जनूनी खूनी दरिन्दा
धर्म या मजहब के नाम पर
दनदनाती गोली/किसी सीने में उतारता है
शान्ति की महकती घाटियों में
चीखों चिल्लाहटों की/बर्बर फसलें उगाता है
बारूद-बमों के धमाकों के साये में
मौत का जश्न मनाता है
इस खबर से बे-खबर
''कि धर्म या मज़हब को/कभी कोई आंच नहीं आती,
कि धर्म नहीं सिखाता/आपस में बैर रखना भी''

धर्म एक वेग है!
बहती हुई नदी का।
धर्म एक तेज है!
सनातन सूर्य का
जो शाश्वत है
पुरातन है।

इस ख़ूनी धमाकों से
सिर्फ आदमी मरता है
निर्दोष, निरीह और लाचार
मरने के बाद/लाश पर
धर्म या मज़हब के नाम का तो
सिर्फ कफन चढ़ता है
या दर्द से भीगे चन्द आंसू।

# धृतराष्ट्र की पर्षदा के पार्षद हम !

जिस दिन- हम होंगे अलविदा
उस दिन क्या रहेगा शेष
सृष्टि-कोश में ?

रहेगा माटी का सोना/हरीतिमा
सन्दल की महक/चहक गौरैया की
चटक फूलों की/गुंजार अलियों की
खिलेंगे कलियों के पके चुम्बन रसीले।
रहेंगी सौन्दर्य की अनन्त कला कृतियाँ
सांसो का सौरभ/रहेंगे मुखरित
प्राणों के बंशी रव/सपनों की गन्ध
क्षितिज के उस पार तक
उड़ेंगे सौरभ विहंग
प्रेमातुर
मिलेंगे परस्पर/होकर विभोर।
घंटे घड़ियाल बजेंगे मंदिरो में
और मस्जिद में अजान।

जिस दिन- हम उड़ जायेंगे परलोक को
उस दिन- क्या रहेगा, शेष दुनिया में ?
रहेगा
सृष्टि का प्रभामन्डल
समुज्वल/लहरो सा रहेगा तरंगित

मनुष्यता का संवाद-रथ।
नयनों का काजल
अस्मिता गोरी की/रूप की गंध
रहेगी लुका-छिपी/चाँद और चकोरी की
उजास भरी होगी दुनिया
थके उदास होरी की।

पर नहीं रहेगा
दानवीय क्रूरता का
यह सुलगता दावानल
झुलसते नरपिण्ड
नहीं रहेगी/मवालियों की भीड़
गुण्डे-गोहरों का आतंक
नहीं रहेगा
हमारा नपुसंक-बोध भी जिन्दा
जिसके मूक इंगित पर
होता रहा यह गिद्ध-नर्तन।
न दे सके हम
उन्हें कोई सार्थक चुनौती आज तक
अ-बोले नतशीश
धृतराष्ट्र की पर्षदा के पार्षद हम!

बेशक हमारे बाद
उठेंगे हजारों हाथ एक साथ
बनेंगे चुनौती
करेंगे गिद्धों का प्रतिरोध
शुतुरमुर्गी सभ्यता में पले हम
जब तलक रहे जिन्दा
न दे सके/सदी के सहमते वृत्त को
क्षणिक सी- कालजयी ऊष्मा
बने मूक दर्शक- विवश हम।

# फिर खिलेंगे गंधवाही फूल

धर्म!
वह तुम ही थे
जो करते थे- तमाकीर्ण पथ आलोकित
दारूण दुखद काल-क्षणों में
बनते थे जन-मन का सम्बल।
हरते थे/जन की पीड़ा
रचते थे/जीवनदायिनी धरती पर
सदा चार सत्कर्मो का नव सृजन।

तुम ही तो- मनुजता के सहज सम्भव
शृंगार थे
तुम ही तो/धरा से आकाश तक/स्वर्ग के विस्तार थे।
तुम ही तो/शरद की भोर सी समुज्ज्वला
सुखानुभूतियों के सरस प्राणाधार थे।
तेरी ही यश धवल पताका
लहराते-फहराते रहे
बुद्ध-महावीर, नानक-कबीर।
सदियों से सदियों तक
करते रहे आत्मोत्सर्ग।
किन्तु अब तुम कहां हो ?
किस हाल में हो
सो रहे हो/या भोग रहे हो कोई अज्ञातवास ?

या कुंठाग्रस्त- पथ भ्रष्ट हो गये हो
विद्रूप हो गई है/तुम्हारी देह और आत्मा।

वे कौन हैं ?
जिन्होंने खींच दी- तुम्हारे नाम पर
विभाजन की एक अमिट रेखा
मन्दिर-मस्जिद के बीचों बीच।
डाल दी
दूरियों की एक लम्बी दरार
ईश्वर-अल्लाह करीम में
राम और रहीम में।

पाखण्ड के/अहंकार के
दुर्बुद्धि दुराचार के वंशज
फिरते है गली-गली
जलाते वस्तियाँ/उजाड़ते घर
नाचते थिरकते/करते अट्टहास
अबोध नंगी लाशों पर
और/फिर जपते हैं माला
तेरे नाम की।

अब क्यों नहीं जन्मता
तेरी आत्मा की कोख से
फिर से कोई बुद्ध/कोई ईसा
जो चढ़ सके सलीब पर
तेरे निमित्त ?
कोई तीर्थंकर/कोई पैगम्बर
जो कर सके छिन्न-भिन्न
मिथ्यात्व का माया-वितान।

कहां लोप हो गई
तेरी अजस्र स्रोत वाहिनी गंगा ?
क्यों-

# फिर खिलेंगे गंधवाही फूल

धर्म।
वह तुम ही थे
जो करते थे- तमाकीर्ण पथ आलोकित
दारूण दुखद काल-क्षणों में
बनते थे जन-मन का सम्बल।
हरते थे/जन की पीड़ा
रचते थे/जीवनदायिनी धरती पर
सदा चार सत्कर्मो का नव सृजन।

तुम ही तो- मनुजता के सहज सम्भव
शृंगार थे
तुम ही तो/धरा से आकाश तक/स्वर्ग के विस्तार थे।
तुम ही तो/शरद की भोर सी समुज्ज्वला
सुखानुभूतियों के सरस प्राणाधार थे।
तैरी ही यश धवल पताका
लहराते-फहराते रहे
बुद्ध-महावीर, नानक-कबीर।
सदियों से सदियों तक
करते रहे आत्मोत्सर्ग।
किन्तु अब तुम कहां हो ?
किस हाल में हो
सो रहे हो/या भोग रहे हो कोई अज्ञातवास ?

या कुंठाग्रस्त- पथ भ्रष्ट हो गये हो
विद्रूप हो गई है/तुम्हारी देह और आत्मा।

वे कौन हैं ?
जिन्होंने खींच दी- तुम्हारे नाम पर
विभाजन की एक अमिट रेखा
मन्दिर-मस्जिद के बीचों बीच।
डाल दी
दूरियों की एक लम्बी दरार
ईश्वर-अल्लाह करीम में
राम और रहीम में।

पाखण्ड के/अहंकार के
दुर्बुद्धि दुराचार के वंशज
फिरते है गली-गली
जलाते बस्तियाँ/उजाड़ते घर
नाचते थिरकते/करते अट्टहास
अबोध नंगी लाशों पर
और/फिर जपते हैं माला
तेरे नाम की।

अब क्यों नहीं जन्मता
तेरी आत्मा की कोख से
फिर से कोई बुद्ध/कोई ईसा
जो चढ़ सके सलीव पर
तेरे निमित्त ?
कोई तीर्थंकर/कोई पैगम्बर
जो कर सके छिन्न-भिन्न
मिथ्यात्व का माया-वितान।

कहां लोप हो गई
तेरी अजस्त्र स्रोत वाहिनी गंगा ?
क्यों-

अलगाव की आसुरी शक्तियाँ
पहन कर तेरा मुखौटा
गुनगुनाने लगी है-पाप सूत्र
पावन ऋचाओं की तरह ?
क्यों-
उगने लगी है
अन्तहीन अकाल मृत्यु की फसल
तेरे खेत-खलिहानों
साधना-स्थलों/धर्मालयों में ?

धर्म तुम चिर ज्योतित हो
हो सदा समुज्ज्वल
जाज्वल्यमान!
हो ज्योति पुरुष
शिव रूप हो तुम।
खोलकर देखो तो सही
अपना तीसरा नयन
क्षण में भस्मसात
क्षार-क्षार होगा
आसुरी शक्तियों का विनाशक मायाजाल।

तड़तड़ाकर टूट जायेगी
अंधी दीवारें
अलगाव की/दुर्भाव की
वैमनस्य/बर्बरता/धर्मान्धता की
फिर से उगेंगे/फिर खिलेंगे/लोहित धरा पर
माननीय चेतना के/अनन्त
गंधवाही फूल।

## दुष्कर ही सही

दुष्कर ही सही
पर/कितना सुखकर होता है
आग को/आग से नहीं
अपने खून से बुझाना
अपने सुख की चिन्ता तजकर
गैरों का सुख बन जाना।

जब अबोध सपनों की
दूधिया फसलें कुम्हलाने लगें
मासूम अधरों पर
आदमखोर
भूख के साये गहराने लगें

वक्त के पहरुये सो जायें
अरामय लम्बी तानकर
काले धन्धों पर सवार
नरभक्षी भेड़िये
चेतना की लाश पर/मंडराने लगें।

जब/कुंआरी साध की अस्मिता को
रौंदने को आतुर हों दरिन्दे
बहेलियों की फाँद में
फड़फड़ाते हों/विवश कातर परिन्दे

तब समय की विपरीत आँधियों की राह में
चट्टान सा तनकर खड़े हो जाना
दुष्कर ही सही- पर कितना सुखकर होता है
चीर कर तूफान की छाती
गतव्य को पाना।

जब चाँद उगलता हो अग्नि
अधकार से अनुशासित हो प्रभात
न्याय को पारिभाषित करती हो
तस्कर चोरों की जमात
विवेकहीनता के कधों पर
बैठी हो/अन्धी होकर युग प्रज्ञा
हर सांस को/हर मोड़ पर
सालता हो आतंक का परिताप

हर करवट में उथल-पुथल हो
हर मन में हो/संशय-संताप
जब आदमखोर दहशत
बस गई हो/हर गांव में
हों पडी बेड़ियाँ अलगाव की
हर पॉव में

तब/विलगाव के इस मौसम में
सौहार्द्र की कोई ग़जल गुनगुनाना
दुष्कर ही सही
पर कितना सुखकर होता है
धारा के विपरीत
लहरों को अनुकूल बनाकर-तिर पाना।
दुष्कर ही सही- पर कितना हितकर होता है
आग को/आग से नहीं
अपने खून से बुझाना।

## जीवन

जन्म
जीवन की प्रथम सांस
अन्तिम मृत्यु भरती है
सांसो की चकरी
जीवन भर
घूमा करती है।

## महत्वाकांक्षा

दो हाथ
दो पांव
बौनी सी काया
ब्राह्मांड को लील गई
उस की लम्बोदरी छाया।

## झूठ

विश्व के पण्डे पुजारी
चिन्तक-मनीषी-धर्माधिकारी
छेड़े हुए हैं
झूठ के विरोध में
एक धर्म युद्ध
युगों, सदियों, मन्वन्तरों से
अनवरत।

झूठ
भयताप से होता नहीं
पराजित/जानता है
छदम् जीवन जीने की कला।
कई बार लगता है सौम्य, सुकुमार
सुन्दर और भला।

उसके मुगालते में
होता रहा है हनन
युगों से
ईसाओं और गांधियों का
चढ़ते रहे
मन्सूर सूली पर।

झूठ अन्तश्चेतना में
घुसकर

हर लेता है न्यायप्रियता-निष्पक्षता
मथित करता है-आत्मा को
देह का सर्वाधिक
मुखर पक्षधर होता है झूठ।

झूठ- अपनी आबनूसी देह पर
पकता है खूब
जब पहन लेता है
सफेद झक्क बगुल-पखी लिबास।
यह सफेदपोशी परिधान
सर्वाधिक सुरक्षित कवच होता है
उस की देह का।
वह बे रोक-टोक पहुंच जाता है
न्याय मंदिर में
वकील के चेम्बर में
अधिकारी के अन्तरंग कक्ष में
दनदनाता है/कोठी-प्रासाद में
व्यापार में साहूकार सा।
रहता है राजनेताओं की
मुख और वाणी में।

ईश्वर
उसी की पैदावार का
एक हिस्सा है!
एक भारी भरकम झूठ को
लोग पूजते है रोज
सत्य की शक्ल मे
न्याय
कई बार तुलता है
उसी के तराजू और बाट में।

झूठ- होता है घुलनशील
तरल द्रव्य सा

समा जाता है
दूध में पानी की तरह
अदृश्य गतिशील।
न्यायप्रियता के सागर को
पी जाता है
आगस्तेय अंजलि से।

झूठ की जड़ें
बहुत गहरी पैठ चुकी हैं
विश्व के प्रांगण में
अमरबेल की तरह।

साक्षी है अतीत
बार बार बोला गया झूठ
सत्य हो जाता है
सत्य की परछांई में रहता है
सत्य को खाता है।

झूठ
स्वयं एक शाश्वत सत्य है
अटल ध्रुव सा।

# पराजित

एक टुकड़ा आसमान
बित्ता भर जमीन
चन्द सपने
मुट्ठी भर धूप।

यह थी
मेरी भाग्य पूँजी
मिली थी
पुरखों से विरासत में।
काफी थी
मेरे लिये
मेरी पीढ़ियों के लिये।

न जाने कब ?
मेरी अवचेतना में
उमड़ने लगा/एक तूफान सा
अतृप्त
अघोरी-आसुरी
आसक्ति का।
बन असीमित
नदी सा/बहने लगा
दहने लगा/बाढ सा
तोडकर/सीमित दायरे।

कितने घर खण्डहर बने
हुई उजाड़ बस्तियां
शिखर डूबे
कलश टूटे
भूलुंठित हुए-भूमि पुत्र
खाक हुई
कितनी हरित पत्तियाँ।

थमा आवेग
आसक्ति का
समाहित चित हुआ
भौतिक वर्चस्व के
साम्राज्य का
स्वप्न टूटा।

मैं वही था
वहीं मेरी धरोहर थी
न तिल बढ़ा
न तिल घटा
सामने मेरे
घायल वसुंधरा का चित्र था
विक्षिप्त सा।
रोमिल देह पर
रिसते हुए नासूर थे
मेरी मायाविनी वासना के
थूहड़ से उपजे हुए
मैं पराजित था/विजयी अशोक सा।

## क्षमा करना मेरे पिता !

हे मेरे जन्म दाता!
स्वर्गीय पिता
मुझे क्षमा करना।

मैं तुम्हारा आत्महन्ता, अपराधी पुत्र
महाकाल के न्यायालय में खड़ा
नतमस्तक-
करता हूँ
तुमसे क्षमा-याचना।

तुम
मुझ पुत्र को
करोड़पति बनाने के चक्कर में
जोड़ते रहे/पाई-पाई पैसा-पैसा
तोड़ते रहे देह
बहाते रहे पसीना
जुते रहे- कोल्हू मे बैल की तरह/जिन्दगी भर।

एक दिन
अपनी चलाचल तमाम सम्पति
सारा वैभव
मुझे सौंपकर
हो गये थे/तुम वानप्रस्थ।

अस्सी को पार कर
बिस्तर पर पड़े-पड़े
जी रहे थे-शेष जीवन
एक दिन ललचाया था
तुम्हारा मन
मिठास के लिए/बोले थे तुम
"बेटा थोड़ी सी जलेबी लाना
या लाना
सेब के मुरब्बे का एक दाना
खाने को करता है मन
खाये बीत गये बहुत दिन।"
"बापू कहां से लाऊं जलेबी
दाल रोटी का बैठता नहीं जुगाड़
अपनी चटोरी जीभ को
थोड़ा लगाम दो
राम का नाम लो"
बोला था मैं
और स्वयं/होटल से
उदरस्थ कर आया था
पूरा मुर्ग मुस्सल्लम।

उस दिन के बाद/फिर
तुम/कुछ न बोले
सदा-सदा के लिये चुपचाप
हो गये विलीन
पंचभौतिक महासागर में।

आज मैं स्वयं
सत्तर को पार कर
पड़ा हूँ उसी बिस्तर पर
जिस पर पड़े-पड़े
तुमने ली थी- अन्तिम सांस

अर्द्धजाग्रत निद्रा में
आता है बार बार याद
मुझे/मुरब्बे, जलेबी का स्वाद
खाये हुए बीत गये बहुत दिन
ललचाता है मन।

तुम्हारा पौत्र
कर देता है रोज-रोज
कोई न कोई बहाना
आखिर/मुझ कलंकी का
खून ही तो बहता है
उसकी रगों में।

मेरे गो-लोकवासी पिता!
मुझे क्षमा करना
फिर जन्म देना
मुझे इस धरा पर
तुम्हारा वीर्यज पुत्र बनकर
ला सकूँ/तुम्हारे लिये
सेब का मुरब्बा/जलेबी का दोना
कर सकूं/प्रायश्चित
मेरे पिता मुझे क्षमा करना!
खड़ा हूँ-
मैं महाकाल के न्यायालय में
नतमस्तक।

## प्रतीक्षा

॥ एक ॥

गिरगिट से रंग बदलते लोग
नरभक्षी भेड़ियों की तरह
हँस रहे हैं
एक पैशाचिक हँसी
कुकुरमुत्तों की तरह
उग आई विलासता की काई
व्यथा की आग में
जलते हुए चेहरे
झुलसे हुए बैंगन से
पिचककर हो गये नीले।
फुटपाथों
पनघटों पर
जम गये हैं-नागफणियों के कबीले
आदमी की जात के।

अंतर में भूख का भ्रूण है
मुट्ठियों में
बन्द हैं-मौत के जखीरे
परशुरामी तीरों ने
कितने घर खण्डहर किये
कितने सर चीरे।

त्याग/तपस्या/अहिंसा
संवेदना के रंग
हो गये बदरंग सारे
तान लम्बी सो गये हैं-युग प्रहरी
घिर रही
आदमखोर घटा गहरी
हो रहा-मूल्यों का विसर्जन
सिसकती हवाओं में
तैरते हैं/प्रतिहिंसा के नारे।

चीजों के सफ्फाक़ चेहरे
पथरा गये
फटे हुए दूध की तरह
दिन/थका हारा/सो गया
लावारिस पत्थरों पर
घर की राह भूले हुए
बच्चे की तरह।

॥ दो ॥

मनुष्यता के दुर्भिक्ष का
यह समय अंतिम नहीं है
अंतिम पड़ाव भी नहीं
जहां ठहर गया हो
गतिचक्र काल का
ध्वस्त हो रहे हैं-शिखर
शोकग्रस्त दिनों के।
निरन्तर निर्बाध फूट रही है
सप्तवर्णी नई कोंपल
क्षितिज/अंजलिबद्ध
नतमस्तक
है प्रतीक्षातुर
स्वागत में नई किरणों के।

धरा श्रृंगाररत
अभिसारिका सी
टांग रही है जूड़े में
ऋतु का पहला फूल।

पनप रही है
एक संवेदनशीला सृष्टि
समय की कोख में
दिशाओं के कानों में
गूंज रहे हैं
गीत गाती कोयलों के रसीले स्वर।
अमित उल्लास का
एक निर्झर
तरंगित होने को आतुर है
मनुष्य की अन्तश्चेतना में।

प्रकृति
अपने तानपूरे पर
गा रही है-एक जीवन गीत
अनहद लय में।
विकसित हो रहा है
मनुष्यता का पारदर्शक
अग्निहोत्र रूप, निश्छल निष्कलंक
थार के जलते हुए जंगल में
उग रहे हैं
रोहिड़े के स्वप्नदर्शी फूल
मधुमास से लदा
एक खेजड़ा
है पल्लवित, पुष्पित होने की प्रतीक्षा में।

## कल्पना करो

कल्पना करो
तुम एक न्यायाधिपति हो
तुम्हारे अपठनीय हस्ताक्षरों से
जीवित देह
परिणत हो सकती है
एक मुर्दा लाश में
थरथरा कर टूट सकता है
एक हरा भरा पेड़।

कल्पना करो
तुम एक विधायक या सांसद हो
तुम्हारे मत से
पराजित हो सकती है
एक कामकाजी सरकार
राष्ट्र पर/लद सकता है
अरबों का असहनीय भार
या
बची रह सकती है
एक/भ्रष्टाचारी
घोटालाबाजों की हत्यारी सरकार।

कल्पना करो
तुम एक व्यापारी हो

धान के जखीरों को
कोठारों में बंद कर
कमा सकते हो अपार दौलत
उत्पन्न कर सकते हो
एक कृत्रिम अकाल
जब कि तुम
हो सकते थे
भूखे नंगों के प्राणाधार भी।

कल्पना करो
तुम एक राष्ट्राध्यक्ष हो
गणाधिपति हो
डाक्टर, अभिभापक हो
नौकरशाह हो
या और भी बहुत कुछ
तुम्हारे इंगित पर
बदल सकती हैं
जन-जन की तकदीरें
हवा का रुख।

कितनी सुहागिनों के उजड़ सकते हैं
सुहाग
कितनी मातायें हो सकती है
पुत्रहीना
कितने घरों के/बुझ सकते हैं
जलते हुए/चिराग़
तुम
बदल सकते हो
बसंत को पतझरो में
दहकते थारों में
खिला सकते हो फूल।

कल्पना करो
तुम जब भी कोई
ठोस निर्णयात्मक कदम उठाते हो
तब क्या तुम्हारी आत्मा
तुम्हारे साथ होती है
प्रसन्नवदना, प्रफुल्लचित
या तुम्हारे किये पर
बहाती है पश्चाताप के आंसू
एकान्त में घुट-घुट कर रोती है

अनुसंधान करो
तुम आत्मचेता कर्तव्यपरायण
प्रबुद्ध जागृत इन्सान हो ?
या आत्महन्ता
हत्वीर्य, जीवित पाषाण हो
नदी के प्रवाह में
लुढ़कता हुआ-जैसे एक पत्थर।

## एक प्रश्न अनुत्तरित सा

नितान्त भूखे अपाहिज
जाने
किस तरह बचा लेते हैं
अपनी आत्मा की अस्मिता
मौसम की बदलती
बदरंग हवाओं से
छल कपट की चरमराती
आदमखोर
गिद्ध-लोलुप निगाहों से।

किस तरह
जी लेते हैं-पूरी जिंदगी
उल्लास और परिहास से परिपूर्ण
अभाव के सलीब पर
टंगे हुए
अलमस्त दीवाने।

कैसे बसी रहती है
अन्तश्चेतना में
बहुत गैरों के लिए भी
मानवीय ऊष्मा की गंध
आज के आतंक युग में ?
जब कि अपने ही

उठा लेते हैं
कफन तक
मैयत से।
किस तरह बचा लेती है
एक नन्हीं लड़की
सीली आग के धुएं से
जूझते हुए
अपने चेहरे का रंग।

जबकि बचा नहीं पाते
बड़े-बड़े दिग्गज
काजल की कोठरी से
अपने बगुल-पंख।
आत्मा को
अर्गला पर टांग कर
मैली कमीज की तरह
किस तरह
जी लेते हैं/पूरी जिन्दगी
कुटिलता निर्लज्जता के साथ
जाने किस तरह।

## एक सवाल देश से

मेरे देश
तेरी गीतापाठी/नवाजी बस्तियाँ
जो
सूर्य की पहली किरण के साथ
भाईचारे की/रचनाधर्मिता पर
मंगलोत्सव मनाती हैं।
स्वप्निल बासन्ती धूप की
ओढ़ कर चूनर
प्रीत का घूमर रचाती हैं
जीवन के रेतीले पृष्ठों पर
उकेरती हैं
सन्तोष और आनन्द की
पावन ऋचायें।
गोबर पुते
सीपियों से नन्हें घरोंदों में
गौरैया सी चहकती हैं
लिखती हैं
वक्त के ललाट पर
कर्म और कृतित्व का आलेख।

तेरी ये गोरस नहायी
गंगा-जमुनी बस्तियाँ

जो तृप्ति की डाल पर
फूल सी महकती हैं
जिंदगी की मधुर सरगम पर
सद्भाव के गीत गाती हैं
सूर्यास्त के होते ही
अंधेरी रात के साये में
क्यों-
परछाइयों सी डूब जाती हैं ?

कत्लगाहों में बदल जाती हैं
'बेलछी', 'शंकर विगहा', की तरह
हत्यारे रौंद जाते हैं
सांसो की दूधिया फसलें
क्यों-
धर्मान्धता के कलुषित गर्त में
डूब जाते हैं
मानवीय संवेदना के अमृत-कलश ?
एकाएक/क्यों
काँच के टुकड़ों सी बिखर जाती है
ये नन्हीं नवाजी गीतपाठी बस्तियाँ ?
मेरे देश जवाब दे!

## ऋषि का साधना धाम है - गाँव

यह गाँव है
यहां पोखर है/ताल हैं
आत्मीय रिश्तों का मंच चौपाल है।
पेड़ों के झुरमुट हैं
नीम है/बरगद है
बरगद की संन्यासी छाँव है।

धरा
मेहंदी रचे हाथ सी है
स्वर्ण पराग सी है
मुंडेर पर चहकती चिड़िया सी
सौहार्द्र की अंतरंग धूप सी है
ज़िंदगी- राग मल्हार सी है
जल तरंग सी
इन्द्रधनुषी रंग सी है।
अखाड़ों में मल्लों का जमघट है।
पनघट है
लाजवन्ती गोरियाँ हैं
अल्हड़ किशोरियाँ हैं
झूला है/पींग है
त्रिहण की गूंज है
वांसुरी की धुन है

दादीमाँ की
पुलकित लोरियाँ हैं।
अनपढ़ हैं
पर जीवन की पाठशाला में
तपे-गुने लोग हैं
निश्छल/कर्मयोगी निर्लोभ हैं।

भोला बचपन है
सजीले जवान है
हिन्दू-सिख तो कोई मुसलमान है
माछी, नाई-लोहार तो कोई त्रिखान है
सबकी एक ही पहचान है
एक ज़िन्द जान हैं
गॉव बसे भाई हैं
सुख-दुख के हमराई हैं

यह गाँव है
प्रकृति का वास है
जीवन-मूल्यों का दूधिया उजास है
कामधेनु से खेत खलिहान हैं।
इच्छायें धरती
मन आकाश है
चहल-पहल है
सन्नाटा नहीं है
भीड़ का ज्वार-भाटा नहीं है।

यह गांव है ।
किसी ऋषि का
क्रीड़ा-स्थल है
साधना-धाम है।

## क्यों अभिशापित है-नारी

नारी
निष्ठा की दीपशिखा सी
तिल-तिल
जलती है
ममता की मोमबत्ती सी
पिघलती है/बलती है।

नयनों का गंगाजल
अश्रु बनकर बहता है
उत्पीड़न की करुण कहानी
कहता है।

वह तारा है
बिक जाती है
काशी के बाजारों में
सीता है
रनिवासों का मोह छोड़
प्रियतम के संग
बन-वीथि से मोह लगाती है
सावित्री है
यम से-
लौटा लाती है
प्रियतम के प्राण।

प्राची की किरणों सी
समुज्ज्वला/
निश-दिन लड़ती है
जीवन-तम से
वह नहीं जानती
निज तन की पीड़ा क्या होती है
पर/प्रियतम के
सिर शूल से भी अकुला जाती है
यद्यपि/अपनी गुलाबी देह को
रेशमी परिधानों से/संजोती है
बाल-बाल/नख-शिख
सजती है/अलंकृत होती है।

वह नहीं बुनती एक भी
सपना/अपने लिये
किसी 'अपने' के लिये
कलियों सी खिलती
फूलों सी मुरझा जाती है।
अमनी कोमल हथेलियों पर
सह लेती है
वज्र प्रहार
देह का कंचन/कोयला होने तक
सहती है नियति की चुनौतियाँ
कोमल इतनी
कि एक नजर से शरमा जाती है।

वह जननी है/जगदम्बा है
उर्वर वसुन्धरा है
आत्म बलिदानी है
नियति है/है बीज सृष्टि का
शुभम्-सुखदा कल्याणी है
फिर भी/कभी

काम-क्रीड़ा के लिये
विवश/बिकती है
काम-गृह में।
जल जाती है
दहेज की चिता पर
मुर्झा जाते हैं
मधुयामिनी के महकते गुलाब।

देह में पलती/ममता के लिये
अवसादों को सह सहकर जीती है
अपमानों/शापों को घूंट-घूंट पीती है।

कभी भूमिजा सी
समा जाती है भूमि में
अग्निकुण्ड में उतर कर
निष्कलंक होने की भरती है
साक्षी।

सांस सांस पर बैठी
हत्यारी पहरेदारी है
नारी होकर जन्मना भी
नारी-जीवन की लाचारी है।
जगदम्बा सबला होकर भी
क्यों बेचारी है नारी ?

सृष्टि की नियन्ता होकर भी
क्यों हारी है नारी ?
यह कैसी विडम्बना है
एक भरे पूरे जीवन की।
विश्वास की-प्रेम की
समर्पण की।

## बेटी

फाल्गुनी धूप सी गुनगुनी
मधुर होती है बेटी
स्वप्न की निच्छल यात्रा सी
निर्मल-निरापद होती है बेटी
घर-आंगन में
केसर-क्यारी सी
महकती, चहकती
सोनचिरैया सी होती है बेटी।

सुवासित होता है
जिससे घर का कोना-कोना।

अपने नन्हे सलोने हाथों से
बुहार लेती है आंगन
लीप लेती है चूल्हा
क्षण-क्षण/माँ के स्निग्ध सानिध्य में
सीख लेती है
खाना पकाने से लेकर
सीना-पिरोना, कढ़ाई तक।
साक्षात्कार कर लेती है
जीवन की अमूर्त सच्चाइयों से भी
रूखा-सूखा पाकर ही,
निहाल हो जाती है बेटी।

नेह के कच्चे धागों से
बंधी होती है धरती से आकाश तक।

पर, कई बार बड़ा धूमिल होता है
उसके हिस्से का आसमान
जैसे संगमरमर पर लिखा-एक शोकगीत
जैसे काँटे में बिंधी एक मछली।
जैसे एक टुकड़ा धूप का/रक्तरंजित।

दुख उसका अपना होता है
उसकी अपनी देह सा
उसके प्राणों सा
सांझी होती है
उसकी निर्मल हंसी
खिलखिलाहट
ओस-भीगी कोंपलों सी
महकते गुलाब सी।

रस्सी कूदते-कूदते, झूलते पींग
न जाने कब बीत जाता है
उस का भोला बचपन
छूट जाता है पनघट
कचोटने लगता है देह को
वर्जनाओं का एक अपराध बोध।

यौवन की देहलीज पर
जब खड़ी होती है बेटी
घर-आँगन में/उफनती नदी सी
चढ़ी होती है बेटी।
उचट जाती है माँ बाप की
आँखों की नींद
बार-बार लील जाती है देह को
आशंकाओं की एक नागिन

थरथराने लगते हैं
घर के मुंडेर/नींव के पत्थर।

लगता है अभिशापित हो गई
पावन ऋचा जैसे
दिशाहीन हो गई, दिशा जैसे।

नहीं/यहीं से शुरु होता है
उसके जीवन-पर्व का एक नया अध्याय
उत्तरार्द्ध।
डोली से अर्थी तक का सफर
धान की पौध सा/होता है
बेटी का जीवन-वृक्ष।
पितृ गेह में तुलसी सी पलती है बेटी
सुहागिन की सेज पर
तन-मन समर्पण करती है बेटी।

प्रकृति पुरुष से/एकाकार होकर
नवसृष्टि का सृजन करती है बेटी।
बेटी विश्व के सनातन मूल्यों का
विस्तार होती है
धरा का अप्रतिम शृंगार होती है

## प्रभो ! ऐसी जून मत देना दोबारा

आखिर
वह जल गई
सूखे घास की पुआल की तरह
रद्दी कागजों से बने
पुतलों की कागजी खाल की तरह।

पहले जली वह अपने ख़्याल में
शब्दातीत यातना में
अन्तश्चेतना की मनोवेदना में
फिर जली सुहागिन की सेज पर
पहन कर, घासलेटी तेल का-सोहाग जोड़ा।

उसने संजायो था एक सपना
गेहूँ की कच्ची बालियों सा दूधिया
सोम भीगी-दूर्वा सा कोमल
स्वप्न में एक घर था
घर में आदमी था
मनचाहा उसका अपना।

जिसे वह बिठा लेती
पलकों की चितवन में
छिपा लेती/मन के पारदर्शी घूंघट मे
सहेज लेती काजल में

मेंहदी में/बिन्दिया में
बचा लेती/बद नजर की
चुड़ैल-इच्छाओं से।

नींद-उनींद में
संग-संग झूलती/बाहों की पींग में।

इतना सा स्वप्न था उसका
आदिम और अभिनव
जिसे हर लड़की देखती है
औरत होने से पहले और बाद तक।

डोली चढ़ी/पिया घर आयी
पर वह घर नहीं जंगल था
जंगल में एक कैक्टस था
जिस की प्रेत इच्छाओं की प्रतिछाया में
भोगनी थी
उसे अपनी जिदगी की पूरी सदी।
सपनों वाला मनचाहा मनमीत नहीं
एक औरतखोर दारूबाज
कमीना और मक्कार था
जिसे वह अपना पति-परमेश्वर कहती
जितना भीतर उतना बाहर था।

दिन/उसका दिन नहीं
यातनादीप्त झुलसा हुआ पहाड़ था
रात के काले साये में
एक अजगर बलात्
चिंचोड़ता था उस की अस्थियाँ
तन्दूर में जलती हों, जैसे
लकड़ियाँ
जिंदगी नहीं/कारागार थी
एक तरफ कुंआ था/दूसरी तरफ खाई थी

ताप संताप था
भूख थी/उत्पीड़न था/तन्हाई थी।
देह नहीं, गर्म गोश्त का एक पिण्ड था।

बहुत दिनों तक रोकती रही स्वयं को
स्वयं की हत्याभियुक्त होने से
आशा को एक धूमिल किरण के सहारे।
शायद किसी दिन बदल जाये
मौसम की रंगत/छंट जाये बादल,
फिरें दिन- जैसे फिरे थे
शबरी के, अहिल्या के।
मिल ही गये थे उन्हें एक दिन
अपने-अपने राम
पहुंची थीं, सपनों के पावन शिव-धाम।

पर नियति ने नहीं लिखा था
उस की हथेलियों पर/ऐसा एक भी शब्द
निःशब्द गूंजता था सांय-सांय
उसकी कनपटियों में/एक भयानक सन्नाटा।

जब नहीं रहा फर्क कोई
जिंदगी और यातना में
यातना और मौत में
तब समा ही गई मौत के अग्निकुण्ड में
भस्मसात हो गई घुन लगी लकड़ी की तरह
लावारिस बे-सहारा।
भस्मीभूत होने से पहले
शायद मांगी हो उसने कोई मन्नत- अपने राम से।
ऐसी कर्मजली, निरीह औरत की जून
प्रभो ! मत देना दोबारा
धकेल देना चाहे कुम्भीपाक नरक में।

## दुख : एक स्पंदन जीवन का

बेशक दुख
निःशब्द, निर्वाक्
आता है दबे पाँव।
जीवन के हरित गलियारों से होकर
पहुँचता है
चेतना के गर्भस्थल तक।
प्राणों के अमृत कलश तक
सांसो की सुरभित सेज तक।
गर्म लावा बन
पिघलने लगती है
जीवन की सुखद ठंडी बर्फ
बूँद-दर-बूँद।

बेशक दुख देहाकाश में
पसर जाता है
शिशिर के धूमिल कोहरे सा
विरहा की लम्बी अंधेरी रात सा
आनन्द अभिसार के मादक क्षणों में
आ टपकता है
अनादृत खलनायक सा।

अस्थिर अस्त-व्यस्त हो जाती हैं
जीवन की सारी कलायें

धूमिल हो जाता है
सारा आलोक/सारी आशायें।

दुख के मायने होते हैं
एक अनचाहा मौसम
जब मीत-अमीत/अपने-पराये
हो जाते हैं दुश्मन- माँ के जाये।

दुख होता है विषादकारी
असह्य, भारी
तन को चाटता रहता है- एक अजगरी कीड़ा।
इतना भर होने के बाद भी
दुख ही होता है
जीवन के अस्तित्व का मूल।
उसका पहला स्पंदन
पहला रुदन, पहली किलकारी।
न जाने किस घनीभूत पीड़ा के
गोमुख से होती है प्रवाहित
पहले पहल रुदन की जीवनदायिनी गंगा
सहोदरा प्राणों की।

इसलिये नहीं होता
कोई जीवन दुख के बिना
जैसे बसन्त/पतझर के बिना
बिना नीर/निर्झर
आकाश बरसता नहीं अनभ्र।

दुख फिर भी होता है- मरणधर्मा
बीत जाता है/रात की काली स्याही सा
पर मरते नहीं/सुख के मायावी सपने।
छलते ही रहते है आयुपर्यन्त/आजीवन।

रुदन और हास्य में
नहीं होता फर्क इतना

अक्सर दीखता है जितना।
वही तो होता है प्रकाशित
जो व्यथा की आग मे
घुलता और जलता है
वह सुख- सुखकर नहीं होता
जो अतृप्ति वासना की गोद में पलता है
जो व्यक्ति अतृप्ति और वासना से मुक्त होकर
सीख जाता है,
सुख दुख को आत्मसात करने की कला
जीवन हो जाता है कंचन
पुष्पित, पल्लवित, समुज्ज्वल।

दस्यु
हो जाता है वाल्मीकि
सहज तपस्वी ऋषि पुंगव
हो जाता है मानवीय चेतना का
दिव्य अमोलक हस्ताक्षर
सार्थक हो जाते हैं
सारे जन्म/सारे मरण
और सारे कर्म-कारण।

## कितने दिन और...

कितने दिन
खेलेंगे और अभी
राजनेता
साँप-सीढ़ी का खेल ?
कितने दिन और करेंगे
मनमानी
दारुण धक्कापेल ?

कितनी बार और पकेगा
राजनीति की हांडी में
जनादेश का भुरता
कितने दिन
और चलेगा
संत-समागम
पहन दुराचारों का कुरता ?

कितने दिन और बहेंगे
मुक्त पवन से
तस्कर, चोर-दलाल
कितने दिन और जमेंगे
स्वर्णकोष पर
प्रहरी बनकर
शातिर नटवरलाल ?

कितने दिन और सुनेंगे
मुग्ध भाव से
बापू के बंदर
जन-जन का संलाप
कितने दिन
दौड़ेगा और
गुण्डे-गोयरों का घोड़ा
सरपट बिना लगाम ?

कितने दिन
और चढ़ेगी दहेज चिता पर बहू-बेटियाँ
कितने दिन होगी
और तिजारत रिश्तों की
जलती लाशों पर सेकेंगे
खुदगर्ज रोटियाँ

कितने दिन और जलेगी
आतंकवाद के साये में
रक्त-मांस की होली
कितने दिन के बाद पकेगा
यह दुखता नासूर
कितने दिन के बाद छंटेगा
यह मनहूस कुहासा
कितने दिन के बाद ?



## उदयकरण सुमन

जन्म : 5 जनवरी, 1931 शिक्षा : प्रभाकर

चौदह वर्ष की उम्र में लिखना शुरु किया। देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में सैंकड़ों लेख, कहानियां, कविताएं आदि विविध विधाओं की रचनाएं प्रकाशित। आकाशवाणी, दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण।

कृतियां : प्रणय गीत (1957), दम तोड़ती सदी (1988)
सम्भावनाओं का सूरज (1994), फिर खिलेंगे
गन्धवाही फूल (2000)

संपादन : अधिकार (साप्ताहिक) एवं जन्मार्ग पाक्षिक का
संपादन एवं प्रकाशन (1951 से 1953)
राजनीति एवं सामाजिक कार्यों में विशेष रूचि

संपर्क : सुमन सेवा सदन, रायसिंह नगर - 335051
जिला : श्रीगंगानगर (राजस्थान)
दूरभाष : 21224, 20623

ISBN : 81-87697-20-2
Rs 75.00